युग-दीप

उदयशंकर भट्ट

प्रकाशक
युनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस
इलाहाबाद

प्रकाशक
युनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस
इलाहाबाद

मूल्य २)

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

अपनी बात

'युग-दीप' में कुछ कविताएँ युद्ध से पूर्व की, शेष सब युद्ध-काल की हैं। इसीलिये वे 'पर्सनल' या व्यक्ति की आशा-निराशा का प्रतीक लेकर चली हैं। युद्ध ने आज हमारे दृष्टि-कोण को बदल दिया है, प्रत्येक वस्तु को, परिस्थिति को नये ढंग से देखने को बाधित किया है। इसीलिये आज के मनुष्य के सामने से संकुचित समाज, देश तथा वर्ग की शृंखलाएँ टूट गई हैं। आर्थिक और राजनीतिक भावनाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व को दबाकर उसकी दृष्टि को संसार के मानचित्र पर टिका देती हैं, जिसमें गाँव, गलियाँ, छोटे मकान, बाज़ार और जाने-पहचाने व्यक्ति नहीं रह गये हैं। रह गया है एकमात्र विशाल देश और उसकी भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ।

मैं नहीं मानता कि आज के मनुष्य के सामने अनादि काल से चले आये जीवन के 'इमोशन' का कोई अस्तित्व नहीं रहा है। क्योंकि जैसे देश करवट बदल रहे हैं वैसे ही मनुष्य का व्यक्तित्व भी करवटें बदल रहा है। उसके सुख-दुख, आशा-निराशा, भाव-अभाव सब में एक नई क्रांति हो रही है। उसमें अपने को नई परिस्थिति के अनुसार पहचानने की क्षमता भी आ रही है। उसी क्षमता का समर्थन युद्ध-काल से पूर्व की मेरी ये कविताएँ करेंगी। दूसरे प्रकार की कविताओं के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। वे स्वयं अपनी बातें पाठकों से कह रही हैं।

श्रावणी,
सवत २००१ विक्रम,
लखनऊ।

उदयशंकर भट्ट

१

अंधकार, अंधकार, अंधकार, चीर चल !
उग रही उषा उधर, उग रहा दिन सकल !

रोक मत प्रकाश को, रोक मत विकास को,
रोक अट्टहास को—मानव उच्छृंखल !

भूख है, अशान्ति है, युद्ध और क्रान्ति है,
क्रान्ति विश्व शान्ति है—हो न तू निर्बल !

लड़ रहे आज ये, लड़ रहे राज ये,
स्वार्थ के समाज ये—खून के रच महल !

युद्ध है बजार में, युद्ध है विचार में,
बजार की पुकार में—युद्ध है आजकल !

आसमान फट रहे औ' श्मशान पट रहे,
तख्त भी उलट रहे—देख देख पलपल !

मनुष्य मात्र एक है, मनुष्य ही विवेक है,
मार्ग यदि अनेक हैं—लक्ष्य एक उज्ज्वल !

अंधकार, अंधकार, अंधकार, चीर चल,

२

धीरे धीरे युग-दीप जला।

अगणित शैशव के हास पिये, यौवन-अतृप्त के श्वास पिये,
मलयज दोलित मधुमास पिये,
पीकर भी हिम सा स्वयं गला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

किंकिणी रात की पहन हँसा, ऊषा पर मुग्ध, न किन्तु रसा,
फूलों के हासों पर न बसा,
दौड़ा न कहीं, रुकता न चला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

संध्या-प्रभात, दिन-रात पिये, अगणित वसन्त-बरसात पिये,
अगणित गरमी हिम-पात पिये,
तूफ़ान मिले न हुआ धुँधला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

मानव की स्वार्थ परायणता, मानव की अर्थ परायणता,
मानव की युद्ध परायणता—
का पीकर खून हुआ उजला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

मानव की चर्बी से भर कर, बत्ती लाशों की बना सुघर,
सघर्ष अनत निगल खरतर,
भू का आलोकित सीप बला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

शैशव, यौवन जल क्षार हुए, अगणित पन्थी उस पार हुए,
तेरी गति में न बिकार हुए,
अपने को खाकर आप चला—धीरे धीरे युग-दीप जला।

३

पल पल करके युग बीत गया—
मोली दुनियाँ के प्यार गये,
सोने के वे ससार गये,
जब मिले न तब पहचान सका—
जब चले गए तब जान सका,
प्राणों की पीड़ा में रह रह जब प्यास जगी घट रीत गया !

प्राणों को जब अरमान मिले,
अरमानों को नव-गान मिले,
जब असफलता अभिशापों के—
जीवन में नव वरदान मिले,
तब मै मन ही मन हार गया अभिमान किसी का जीत गया।

हर सुबह जवानी आती है,
हर साँझ कहीं छिप जाती है,
दिन पल पल ढलता जाता है,
जग पल पल चलता जाता है,
पल पल मेरा भी 'वर्तमान-जीवन' बन एक अतीत गया।

जो मिला न वह रख ही पाया,
जो गया न वह फिरकर आया,
क्या होगा आगे ज्ञात नहीं,
बतलाने वाला साथ नहीं,
आशा ही आशा में मेरा सारा जीवन बन गीत गया।

कोई बिखेरता जाता है,
कोई समेटता जाता है,
निशि दिन की चर्खी पर—
जीवन-डोरी लपेटता जाता है,
ककाल मात्र वह आज बना जो जीवन बीत पुनीत गया।
पल पल करके युग बीत गया।

४

अंधकार अनंत सिर धर जल रहा दीपक अकेला ।

अमित भू, निःसीम नभ-
ऊपर तिमिर - घन जाल भी है,
पवन रह रह चल रहा जीवन,
अनोखा काल भी है;
नदी तट पर मूक जलता हँस रहा फिर भी उजेला !

श्वास लघु, उन्माद मीठे,
साधना के ध्यान संबल,
उगलता वरदान उज्ज्वल,
घूँट में पी निशा काजल;
तिमिर-जीवन में सँजोये प्राण का आह्वान खेला !

काल की अक्षय अमा में—
हाय, इसका हास कितना ?
धूम - छाया - चित्र में हिम - तूलि-
का इतिहास कितना ?
जलन में निर्माण भर कर, नाश में उल्लास मेला !

निकल कितनी दूर आया,
दूरियाँ भी पार की हैं;
धूम ही जब अंत इसका—
तब जलन बेकार की है !
साँझ तेरा 'अथ', उषा में—
अंत होता जा रहा है,
उदय ही जल जल मरण का—
पन्थ होता जा रहा है !

मृत्यु में अणु - प्राण का किसने उजेला बढ उड़ेला ?

५

दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू !
सृष्टि का मधुमास मैं, रे प्रलय का निश्वास तू !

खिल रहा यौवन - निशा का हूँ जवानी मैं,
भूमि पर तारे उगा कहता कहानी मैं।

आग से मत खेल मैं अगार हूँ जग का,
स्वयं जलकर कर रहा शृंगार हूँ जग का।

आँख हूँ मैं विश्व की, उल्लास हूँ अपना,
प्राण का व्यापार हूँ मैं स्वर्ग का सपना;

हास हूँ मैं सृष्टि का—अपना स्वयं उपहास तू—
दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू!

—लगा कहने तिमिर बैठा दीप के नीचे
देख आँखें खोल आगे, देख टुक पीछे,

घेर चारों ओर से मैं ताकता तुझको,
अत तेरा है मुझी में भय नहीं मुझको,

तू लहर है तिमिर सागर में उठी औ' खो गई,
तारिका सी रात में झाँकी, थकी औ' सो गई?

मैं असीम, ससीम जीवन का अरे, लघुश्वास तू!
दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू!

६

मैं जीवन से भय खाता हूँ—
अपना रूप देख शीशे में देख अचाहा खो जाता हूँ।

देख रहा हूँ उस सपने को—
जिसमें पिसती हुई जवानी,
धीरे धीरे लिखती जाती—
रक्त बिन्दु से क्रान्ति-कहानी।
देख रहा हूँ वह अदृश्य कल—
मानव रुण्ड रुधिर से न्हाता;
लक्ष लक्ष ज्वाला-मुखियों से,
नवयुग का शृंगार सजाता।

प्रणय-गीत में क्रान्ति बोलती कब विद्रोह दबा पाता हूँ।
मैं अपने से भय खाता हूँ—

रोज शाम को संध्या का मुख—
मुझे दिखाता खूनी सागर!
तारे वेशुमार लाशों के—
मुख गत-साँस, चद्र हड्डी-घर,
पुष्प मृत्यु का हास दीखते,
सब सागर मनु का जल-प्लावन;
नदियों की गहराई में भय,
मुझे दीखता मरण मरण जन।

स्वय हास में कंकालों का अट्टहास सुन अकुलाता हूँ'
मैं अपने से भय खाता हूँ—

सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है ,
जो शैशव से दूर जवानी में वह ही मुसकाता है ;

जीवन के इस लबे पथ से—
हर 'इति' जुड़ी हुई हर 'अथ' से ,
बिना हिले भी बिना डुले भी—
चुप चुप जीवन-प्राण साँस के रथ, पर जाता है ।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है ।

बीज अंकुरित हुआ धरा पर ,
फैला बढ़ा, बना वह तरुवर,
खड़ा खड़ा ही सूख गया वह—
'अथ' का आँचल छोड़ मृत्यु का गीत सुनाता है ।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है ,

मैं चलता फिर मुड़ आ जाता ,
गाया हुआ गीत फिर गाता ,
जीवन का चलना फिर अनथक—
अनचाहे भी उसी लक्ष्य को अनरुक पाता है ।
सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है ।

लबी रेखा 'आदि - अन्त' की ,
सुख-दुख, पतझड़ की, वसन्त की ,
जीवन में शत शत जीवन भर—
दूर निकट के छोर पकड़ता, तजता जाता है ।

८

बीत गया फिर शेष रहा क्या ?

दोनों हाथ लुटाया दिल ने देना उसे अशेष रहा क्या ?

आँखों आँखों हास चुराकर,
दिल दिल में मधुमास चुराकर,
कल की आशा में जो सोये,
पलकों पलकों स्वप्न सँजोये,

वे हँस भी न सके खिल पाये,
खिलते खिलते ही मुरझाये,

मुरझाने वाली कलियों में उगने का उद्देश रहा क्या !

यौवन जिनका अंगारा बन,
चमक उठा नभ, पृथ्वी आँगन,
शीतल मधुर हिमालय सा स्थित,
सागर सा गभीर तरंगित,

रूप मिला—अरमान बन गया,
मरण मिला—वरदान बन गया,

उनके नरक स्वर्ग से मीठे उनको कोई क्लेश रहा क्या ?

जब दिनकर नव ऊषा लाया,
नव शशि ने किरणों मे गाया,
ताल नया, लय नई उमगें,
नई नई भर नई तरगें,

पतझड़ में भी नया प्यार ले,
फूलों में भी नव उभार ले,

तिल तिल बुझता दीप उषा को देता नहीं सँदेश रहा क्या ?

१०

रो रही है बादलों से झाँक किसकी आग ?
बूँद में इतिहास मन के लिख, चमकते दाग।

खून पानी बन गया सब प्यार का,
क्षितिज तक उड़ती हमारी हार का,
वह घुमड़ कर टुकड़ियों में जुड़ गया,
जिधर बेचैनी उधर ही मुड़ गया,
रुधिर से न्हाई हुई हर साँस में,
बन गया सावन जलन मे, प्यास में।

आग बन आई वही हर बूँद भर अनुराग,
रो रही है बादलों से झाँक किसकी आग!

आज आँखों में धधकता द्वेष है,
खून की लिखता कथा हर देश है,
जो न होना चाहिए वह शेष है,
बम्ब का हर वार 'नव सदेश' है,
डाल दे परदा कि देखे रवि नहीं,
बहक जाए बादलों में कवि कहीं!

हो गया नर आज दानव, हो गया नर नाग—
रो रही है बादलों से झाँक उसकी आग।

११

मानव, तुमसे हार गया मैं—
कैसे प्राण जगाऊँ स्मृति के जब अपना बन भार गया मैं।

स्वर्ग तुम्हारे लिए बनाये,
मधु-मासों के हास बुलाये,
अमृत चषक भी तुम्हें पिलाये,
तब भी तुम न अमर हो पाये व्यर्थ तुम्हारे द्वार गया मैं।

जीवन का व्यापार बताया,
मैंने आत्म-ज्ञान सिखलाया,
मैंने ब्रह्मानद पिलाया,
तुम नर, नाश पी रहे—जीवन लेने को बेकार गया मैं।

सावन के घन घिर आते हैं,
रो रोकर सब छिप जाते हैं,
आकर दिवस लौट जाते हैं,
सुनने गया गीत रवि-शशि के व्यर्थ गया, उस पार गया मैं।

अपना ही अपमान किया है,
महा-मरण आह्वान किया है,
कवि का स्वर्ग मसान किया है,
डूब रहे तुम, तुम्हें उठाने गया, डूब मॅझधार गया मैं।

मानव तुमसे हार गया मैं—
कैसे प्राण जगाऊँ स्मृति के जब अपना बन भार गया मैं।

१२

मैं कब हारा, मैं कब हारा !
सागर में गोते खा मैंने पाया सही किनारा !

शूलों को भी फूल बनाते,
असफलता को धूल बनाते,
जीवन को अनुकूल बनाते,

दिवस-रात के पंखों पर उड़ भूपर स्वर्ग उतारा !

प्राणों का उल्लास चढ़ाकर,
पतझड़ को मधुमास बनाकर,
महा-तिमिर में आस जलाकर

वर्तमान को बो भविष्य में मैंने जाग पुकारा !

हार जीत का आमंत्रण है,
गिरना तो चलने का गुण है,
दौड़ पहुँचने का साधन है;

आओ, चलो, उधर देखो, उग उठा क्षितिज से तारा !

अभी मुझे चलना है बाकी,
तुमको भी ले चलना बाकी,
डरो न यदि निर्बलता झाँकी;

नर को है देवत्व पूजता वहाँ जगत ही न्यारा !

मैं कब हारा, मैं कब हारा—
सागर में गोते खा मैंने पाया सही किनारा !

१३

तू हारा, मैं जीत गया।
तेरी भूल मुझे दे जाती हर मंजिल का गीत नया।

तेरे अश्रुपात से मैंने
जो सागर बहता था देखा,
उनकी लहरों से नापी थी
अपने कवि जीवन की रेखा;
तेरा दुख मेरे प्राणों में बस बन 'स्वर्ग-पुनीत' गया।

शैशव में दो साँस मिली थी,
यौवन में उल्लास मिला,
आराधना शक्ति की पतझड़—
के पीछे मधुमास मिला।
तू दौड़ा, जा छिपा मरण में, मरण मुझे बन गीत गया।

तूने स्फटिक - शिला पर
निशि में प्रेयसि का शृंगार किया,
किन्तु भूलकर मद में गुपचुप
कंकाली को प्यार किया!
लिक्खा मैंने चिर शिव, सुन्दर वह तुझसे अनधीत गया।

आ चल, मेरे साथ दिखाऊँ,
हे अनपायी शक्ति महान!
तेरे लिए विश्व है सारा,
हस्तामलक मुझे वरदान,
तू पहुँचा न अरे अविनश्वर, बीत गया सो बीत गया।
तेरी भूल मुझे दे जाती हर मंजिल का गीत नया।

तू हारा, मैं जीत गया।

१४

स्वर्ग भी मैं ही नरक भी मै !
भग्न-लय मैं ही गमक भी मै !

मै उषा का हास हूँ दुख की अमा का ग्रास,
स्वप्न में मैं पूर्ण हूँ प्रति जागरण में ह्रास;

जल रहा हूँ दीप सा रजनी तमिस्रा में,
गरल पी जाता कभी अपनी बुभुक्षा में;

और बू मैं ही महक भी मै !

नव-प्रसू-शिशु के रुदन में हँस रहा अज्ञात,
विश्व का सौन्दर्य यौवन का नशीला प्रात,

और यौवन की प्रभा में झाँकता चिरकाल,
मौन कवि के स्वप्न में होता अचिर ककाल,

मौन भी मैं ही चहक भी मैं !

हास जिनके अधर पर है अश्रु उनके मौन,
है प्रतीक्षा में न जाने अनागत वह कौन ?

ढूँढता हूँ फूल बिंधते कण्टकों से हाथ,
पैर में गति पर नियति देती न मेरा साथ !

हर्ष भी मैं ही कसक भी मैं !

गीत गाता हूँ इधर भीतर उधर है आग,
और रोता प्राण जब पुलकित जगत का राग,

रूप औ' अपरूप, सुन्दर, घृणित मेरा आप,
मै स्वयं वरदान अपना औ' स्वय अभिशाप;

तिमिर भी मैं ही झलक भी मैं !
स्वर्ग भी मैं ही नरक भी मैं !

मैं रहा देखता मूक खड़ा—कुछ स्वर बिखरे बन गान गये !

मेघों के प्यार फुहार मधुर,
बिजली के स्वर साकार मधुर,
नन्हीं-नन्हीं उमग लेकर,
कुछ मीठा दर्द सग लेकर,
कुछ आँखों में बन स्वप्न गये—कुछ जीवन में बन ध्यान गये !

चाँदनी माँग में भर भर कर,
रातें चुपके से उतर उतर,
सपनों से आतीं मुसकातीं,
औ' नए स्वप्न बनती जातीं,
तब मेरे मौन पुकार उठे—मधुमास मूक बन प्राण गये !

उनकी पायल के स्वर बोले,
आँधियाँ पिये आँसू घोले,
मेरे होशों की हार लिये,
कुछ दर्द लिये, कुछ प्यार लिये,
तब और माँगने साँस लगी—साँसों से जीवन दान नये !

कब जीवन मेरा जहर हुआ,
कब यौवन उनका अमर हुआ,
मेरी उलझन बन गीत गई,
उनकी हारें भी विजय नई,
भर चली बुलाने प्रलय मुझे—
हर लहरों में तूफान नये।
मैं रहा देखता मूक खड़ा-कुछ स्वर बिखरे बन गान गये !

१६

यह क्या कैसा मैंने पाया ?

क्या जाने किस अनजाने में—यह कटु कटु तर, यह मृदु मृदु तर,

चल लहरों सा चचल सुखकर,
सित-ओस कणों सा प्रतिपल ढल,
स्मृतियों की ग्रंथि बाँध अंचल !

मैं निज को बहलाने आया—
यह कैसा क्या मैंने पाया !

क्यों अनचाहा इसमें मिलता, औ' चाहा मिलता नहीं खूब—

मैं इसी दिशा से ऊब ऊब,
आशा सी निज आँखें पसार—
कुछ ढूँढ़ रहा हूँ बार बार—

कुछ जाना कुछ न जान पाया—
यह कैसा क्या मैंने पाया !

रजनी में सरिता के तट सम मैं देख पा रहा एक कोर,

आगे का कोई नहीं छोर
क्या जानूँ केवल वर्तमान ?
दिन सा उज्ज्वल निशि सा अजान !

मेरी ही सीमा बन आया
यह कैसा क्या मैंने पाया ?

१७

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

सो रहा है,- अँधेरे से
लिपट चंचल मन।

साँस की ले तूलिका आकाश के रँग बोर,
खींचता हूँ स्वप्न की तस्वीर चारों ओर,
पर न भर पाती मुखर स्वर, दृगों का इतिहास,
पर न लिख पाती हृदय में तुम्हारा मधुमास !

जागरण बन पी रहा है
कौन यह यौवन ?

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

सो रहा संसार आँखों में चुराए नींद,
इधर जल कर बुझ चुकी है एक जो उम्मीद।
प्यास भी बुझती न, जलती राख में से आग,
ढूँढते हैं स्वप्न मुझको, हर निशा में जाग !

कौन तट से चला
टकराने लहर जीवन !

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

आज सैंतालीस वर्षों के सभी क्षण मूक,
रख रहे थे जो निबल अनजान-पथ पग फूँक,
कौन जाने साँस के सँग उड़ गए किस ओर,
पिस गए दिन रात के दो पाट में शहज़ोर ?

अब नहीं वह मैं,
न मेरी उलझती चितवन ?

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

बोलता कोई सुनाई दे रहा उस पार,
क्या तुम्हीं हो वह बहाता जो नदी बन प्यार,
प्रकृति ने किसको दिया यह प्राण-सा उन्माद,
और प्राणों ने लिया कब रोक—वेग अबाध ?

भूल सुलझा लो
अभी है शेष जीवन-क्षन !

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन !

१८

विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?
मंगल गीतों का मृदुतर स्वर गूँज जगत अपलाप बना क्यों ?

तिमिर - ग्रस्त दुर्भाग्य भीम से
काजल से इस काले काले,
शव से छलक उठा सा जीवन
जीवन का संताप बना क्यों ?

लहरों से खेला करता रवि
लहरों में ही छिप जाता है,
भूधर पर सिर रखकर जाने
कैसे जलन बुझा पाता है ?

कलियों के प्राणों में बैठा—
मूक-गीत-स्वर साध रहा है,
क्या सपनों में हँसने वालों का
यौवन आबाद रहा है ?

जाने अपनी इन आँखों में मैं अपना ही पाप बना क्यों ?
विजयिनी, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?

तुमने चुप चुप मेरे पथ में
बिछा दिये थे नभ के तारे,
किन्तु न जाने कैसे वे सब
लगे मुझे जलते अंगारे !

ऊब चुका हूँ मैं जीवन से
मरण माँगने को अति आतुर,
मेरे रोम रोम के चिंतन
लगा न मुझको सके किनारे;

प्राण बना उपहास, न जाने व्यंग्य गीत आलाप बना क्यों !
रगिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?

रूपसि, यह सौंदर्य तुम्हारा
कब तक मुझको मान रहेगा ?
कब तक पायल के गीतों में
डूबा मेरा गान रहेगा !

कब तक सुधा भरी आँखों में
बिजली का संहार रहेगा !
कौन अवधि तक हृदय किसी का
जलता सा अगार रहेगा ?

लघु, सीमित मेरे जीवन में प्रिय का रूप अमाप बना क्यों ?
विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों ?

१६

आज इस गुरु हार में जाने अमृत भी द्वार क्यों !

कितना महान पुनीत मैं,
कितना विवश भयभीत मैं,
लिखता कथाएँ स्वर्ग की
बन कसक जातीं दर्द की।

मेरे हृदय अनुराग में है आग ही साकार क्यों !

तूफान बाहर उठ रहे,
अरमान भीतर घुट रहे,
है वज्र मेरे एक कर,
है अमृत का घट कर अपर,

संहार फिर चुप चुप सिमट मेरा हुआ 'उपहार' क्यों !

अब कौन साधे चाल को,
अब कौन बाँधे काल को !
क्या नीलकण्ठ कहीं नहीं,
जिसने पिया विष घट यहीं !

जग नाचता सकेत जिसके वह हुआ लाचार क्यों !

लो, आग मैं पीने चला,
विषराग पी जीने चला,
लघु आस जो मुझको मिली—
उपहास बनकर वह चली—

फिर मोल यौवन का यहाँ होगा नहीं 'बेकार' क्यों !

२०

हास भीने स्मृति सलज दृग, प्राण मे पुलकन सँजोये,
ढूँढते किसको न जाने स्वप्न आलिंगन भिगोये ?

वारुणी में होश तिरते
हँस उठे अनुराग वासित,
दृगों में बीती खुमारी की—
कथाएँ जगीं अलसित,

प्रिय अधर की बिजलियो ने छू व्यथा के श्वास धोये।

कौन तुम चितवन नशीली—
मे उलझ बन गीत जाते
और स्वप्नो के कुहर से झाँकते—
फिर भी न आते ?

मिली मुझको मधुर सिहरन चाह साँसों में पिरोये।

मैं नशीले स्वप्न सा—
सब भूल अपनापन चुका हूँ।
और भूलों पर उठाए याद—
के क्षण गिन चुका हूँ,

कौन अनजाने, हृदय में आज मीठे गान सोये।
हास भीने स्मृति सलज दृग प्राणप्रिय पुलकन सँजोये।

२१

पहले ही आँसू क्या कम थे ये आग पिये आये बादल।
सागर सी पीडा क्या लघु थी आहों से लिपट चले क्यों पल?

बेचैनी बढ़ती जाती है
क्यों रोम रोम में मानव के,
अंधेरी उठती आती है
क्यों जीवन से जीवनमय के?

क्यों ज्वार उठा है अम्बर में
बिजलियाँ कडकती हैं भू पर,
क्यों महानाश का प्रलयंकर
स्वर सुन पड़ता नीचे, ऊपर?

पतझड ही पतझड़ होगा क्या
शत-शत श्मशान की बारी है;
क्यों कुसुम सुरभि अभिषिक्त धरा
जीवन से ऊबी हारी है?

जमघट उजाड़ का गैसों मे
जमघट उजाड का दिल दिल मे

मेरे ये दुर्दिन मीठे से
क्यों आज भरे आते 'पल में',

क्या सूने सुख के गीत हुए
सब निगल स्वार्थ मानव जागे,
क्यों सब मुड़ पीछे प्रेम गए
सब अनाचार आगे - आगे ?

ओ माँझी, लङ्गर डाल देख, तूफान उठ रहा है पल पल।
पहले ही आँसू क्या कम थे, ये आग पिये आये बादल !

आशाएँ हँसतीं कलियों की,
विश्वास नाचते कुसुमों के,
हो मस्त थिरकते झूम - झूम
झपकी सी ले समीर झोंके,

मेरा नाचा था रोम रोम
इस फूली फूली महफिल में,
था पोर पोर से उलझा मन
दरिया - सा बहता लघु दिल में,

वह कौन प्यार था जो न मिला,
वह कौन कली थी जो न खिली,
वह कौन हृदय था जो न हिला,
वह कौन हविस थी जो न मिली,

अब क्या मिलने को बाकी है
अब क्या पाने को भू पर है ?
आँसू का सागर नीचे है।
आहों का सागर ऊपर है !

प्रिय के वियोग से रो पड़ता
फिर चुप होता आगत को पढ़,
पर यह भविष्य इतना भीषण
है नाच रहा मानव पर चढ़।

विश्वास, प्रेम मानों हमने
सब ढूँढ़-ढूँढ़कर गाड़ दिये,
कङ्कालों पर चढ़कर हमने
सब फूल छोड़ झङ्खाड़ लिये!

क्या अभिलाषा के सागर को
तिरने का और उपाय नहीं?
क्या जीने देना नर-समाज को
है अभीष्ट असहाय, नहीं?

यदि इतना भीषण हुआ आज जाने क्या होगा कैसा कल?
पहले ही आँसू क्या कम थे जो आग पिये आये बादल?

२२

आज नई आई होली है।
महाकाल के अंग - अंग में आग लगी धरती डोली है।

सागर में बड़वानल जागा, जाग उठीं ज्वालाएँ नग से,
प्रकृति-प्रकृति के प्राण जल उठे, हालाहल उबले पन्नग से।

स्वर्ग जल उठे, अम्बर रोये तारों ने आँखें धो ली हैं।

नर आँखों में भर अंगारे, रक्त प्यास लेकर जागा है,
जीवन ने अपनी साँसों से, अपना मरण-दान माँगा है।

मानव के सब बंधन टूटे प्राणों की खाली झोली है।

कृष्ण, बुद्ध, ईसा का कहना, क्या इस नर को व्यर्थ हो गया?
सोच रहा हूँ बैठा-बैठा, क्या साहित्य निरर्थ हो गया!

निश्चय, नवयुग देख रहा नव-जीवन की आँखें भोली हैं।

लपटों में साम्राज्य जल रहे, दृष्टि-बिन्दु बदले हैं पल-पल,
महामरण की चिनगारी में, झाँक रहे नव आगत चंचल,

हिम-आवृत शव के अधरों ने एक नई बोली बोली है।
आज नई आई होली है।

२३

आज विवशताएँ प्राणो की
एक नया तूफान लिये हैं,
बलिदानों की चिता सजाकर चिनगारी के गान लिये हैं!

कैसे रोक सकूँ अन्तर के—
हाहाकार तुम्हारे स्मय से,
कैसे सतत पराजय रोकूँ,
अपनी कल्पित क्षणिक विजय से!

जीवन-महलों की नीवों में
शैशव के सुख गाड़ चुका हूँ,
यौवन-कगूरों से उड़ते
मीठे स्वप्न उखाड़ चुका हूँ;

आँधी तूफानों से बीते
वे दिन अब कुछ याद नहीं हैं,
आँखों में चुभती आँखों के
पुलकित पल आबाद नहीं हैं;

कुछ स्मृतियाँ हैं भार हृदय की,
कुछ जीवन मुसकान लिये हैं,
आज विवशताएँ प्राणों की एक नया तूफान लिये हैं।

युग-दीप

दिवस निशा के लम्बे पथ पर
हम युग युग से चलते आए,
चले जागते, चले सुप्त भी
थके, ठहरने किन्तु न पाए;

पीछे कोई कहीं न साथी,
आगे का पथ ज्ञात नहीं है;
फिर भी चलना यदपि अँधेरा,
रोके ऐसी रात नहीं है!

कहाँ चला हूँ कब पहुँचूँगा -
बिना लक्ष्य क्या चलते जाना!!
कहीं किनारा नहीं दीखता
मेरा पन्थ दूर अनजाना;

अंग अंग टूटे जाते हैं,
संगी सब छूटे जाते हैं!
मेरे भग्न-स्वप्न से जग के
मीठे सपने टकराते हैं;

अन्तिम पृष्ठ उलट देने का
कोई खड़ा विधान लिये है।
आज विवशताएँ जीवन की एक नया तूफान लिये हैं।

ठहरो, एक नजर भी क्यों मैं
डाल न लूँ दुनिया के ऊपर?

ठहरो, रुकने से पहले ही
क्यों न टटोलूँ अंतर के स्वर !

पर पीछे मुड़ सकने का तो
जग में यहाँ विधान नहीं है,
कोई कहता—"चलो मुसाफिर,
पीछे रिक्त-स्थान नहीं है"!

चलता हूँ चलता जाता हूँ
अंधकार में बढ़ता जाता ;
आलम्बन लेकर अतीत का
निज आगत को घड़ता जाता ;

देखो, ज्यों दिन के छोरों पर
सुबह शाम की गाँठ लगी है ;
इसी तरह जीवन कोनों पर
गत, आगत अनुरक्ति जगी है,

इस अतीत के औ' भविष्य के
पखों पर ज्यों वर्तमान है,
त्यों स्मृति, आशा के पखों पर
उड़ता जीवन का विमान है,

कहीं लक्ष्य पर जा गिरने को
तीर चला संधान लिये है।
आज विवशताएँ प्राणों की एक नया तूफान लिये हैं।

२४

क्यों आज छलकता जीवन मधु, इन खाली टूटे प्यालों में !
क्यों जाग उठे पल पल चंचल जीवन रस ले ककालों में ?

पतझड़ क्यों देख रहा मीठे-
मीठे सपने नश्वर स्वर में,
क्यों सुरति जागती हलकी सी,
छलकी सी नीरस सागर में ?

मेरे सपनों में सपनों के
संसार नाचते क्यों पल पल,
सूखी सरिता में भरती है
हिल्लोल लजीलों की कल कल !

मैं प्रलय बाँध निज अञ्चल में
निर्माण कर रहा नव जग का,
मैं घोर निराशा में हँसकर
सम्मान कर रहा नव जग का,

ये फूले किसकी आशा से बुदबुद आहों में, छालों में,
क्यों जाग उठे पल पल चंचल जीवन रस ले कंकालों में ?

दिनकर के केशर कुन्तल ये
सावन की साँसों पर झूले,
नित साँझ प्रलय की लहरों में
छिप जाते सब फूले फूले,

मस्ती कलि की मुसकानो में
मद भरती लहरें लेती है,
औ' किसी हवा के झोंके से
कण कण में जीवन देती है।

मैं फूला कल की आशा में
उल्लासो के झूले डाले,
जीवन रस तृप्त धरा कर दे
नवजीवन के भर भर प्याले,

कण कण में मानवता का स्वर
स्वर स्वर में जीवन जीवन हो,
जीवन में जाग्रति, शक्ति भरे
उल्लसित विश्व अमरागन हो।

छल, घृणा, व्यग्य, कटुता न रहे प्राणों के पावन-तालों में।
क्यों जाग उठे पल पल चचल जीवन-रस ले ककालों मे?

२५

पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर !

—प्राण में निःसीम गति का द्वन्द भर कर,
और गति में अनवरति का छंद भर कर,

आ रही हूँ सुबह से बहती हुई मैं,
आप ही अपनी कथा कहती हुई मैं,

रात के दो छोर, पथ के दो किनारे,
बह रहा सब जगत-जीवन इस सहारे;

कौन मेरा तट, कहाँ, आधार कितनी दूर !
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर !

—कह उठा कवि तट नहीं तेरा कहीं है,
मध्य को किस अन्त ने घेरा कहीं है !

तट हुआ मँझधार का मँझधार क्या फिर !
अन्त हो जिस प्यार का वह प्यार क्या फिर !

मुक्त पारावार में जाकर मिलेंगे,
लहरियों के प्यार में जाकर खिलेंगे;

आप ही संपूर्ण को अधिकार कितनी दूर !
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर !

२६

*बिटिया, दुख का अन्त हो गया—
प्राण व्यथा से जूझ रहा था पाकर मृत्यु वसन्त हो गया!

तीव्र व्यथाएँ श्वास श्वास में बोझिल बादल बन उड़ती थीं,
क्रंदन नभ के तारों में घुल जीवन-गान अनत हो गया!

मूक व्यथा के भीतर तेरे छिपे हुए थे शत शत क्रंदन,
वही चिता का चट चट स्वर बन वरद-स्वर्ग का पन्थ हो गया!

तूने ज्वलित चिता को अर्पित कर डाला चटपट ही यौवन,
क्या यौवन का स्वप्न सुनहला तुझको दुखद दुरन्त होगया?

मेरी आँखों में पलकर तू साँसों से खेला करती थी,
स्नेह-दीप बुझ गया आज वह जीवन फैल दिगन्त होगया!

यह उद्धूम चिता-स्वर चंचल मसल रहा है मेरा सबल
तेरा मरण जागरण मेरा जल जल एक उदन्त हो गया?

---

*बेटी स्नेहलता की लम्बी बीमारी के बाद चितादाह पर लिखा गया।

२७

स्वप्न की परियाँ उतरतीं आज बूँदों पर।

निरख हँसते
धरा के शृंगार
रह रह कर।

मोतियों में स्वर्ग का इतिहास लिख आया,

छवि छलक आई
ललक उल्लास -
मधु छाया,

बादलों ने श्वेत तारों के बिछाये जाल,

असंख्यों संदेश
भेजे प्रणय
जादू डाल,

किन्तु गल पानी बने वे पी हृदय का ज्वर -
स्वप्न की परियाँ उतरतीं आज बूँदों पर।

प्राण-बन्धन

अनजाने आँखों में बिंधकर
शूल फूल बन कौन गया।
प्रिये, तुम्हारी चरण-चाप सुन
बहक स्वर्ग का मौन गया।

बेहोशी में नए होश भर,
प्राणों में मधु प्राण लिए,
तुम झाँकी जिस ओर झुके दृग
पूर्ण अपूर्ण विराम लिए।

तुम आई थीं एक प्रश्न
बन जीवन में साकार हुई,
बन न सका मैं उत्तर मुझको
प्रश्नावलि ही भार हुई।

प्रथम प्रहर मे बाँधा जीवन
शैशव ने निज बधन में,
सटा मिला मुझको शैशव से
मेरा बधन यौवन मे।

प्राण, बाँध तुम गई न जाने
किस अपने आश्वासन मे,

चरण चरण उल्लास मिला
मधुमास मिले सब चिन्तन में !

विहगि, तुम्हारा स्मय यौवन के
चरण चरण का छंद हुआ !
मेरा स्वप्न जागरण बनकर
नए स्वप्न में बन्द हुआ।

जिन आँखों से तुमको देखा
वे आँखें बन प्यार गईं;
सृष्टि न जाने कहाँ खो गई,
दुनिया ही बेकार गई !

कथा पुरानी भी भरती है
मुझ में आ अरमान नये,
प्रिये, तुम्हारे गीत पुराने,
आ जाते बन गान नये !

जब सध्या ने अँगड़ाई ले
रजनी के मुख प्यार दिया,
जब शशि किरणों ने रजनी की
माँग भरी, शृंगार किया,

जब ऊषा ने पलक खोलकर
जीने का अधिकार दिया,

तब तुमने भी एक बार फिर
खोल हृदय का द्वार दिया।

उलझन गीत बनी, स्मृतियाँ सब
प्राण प्राण की साँस बनीं,
संशय की सब नग्न आँधियाँ
हृदय बनीं, विश्वास बनीं;

नूपुर की गति पर लय देकर
गाता गीत अतीत गया,
प्रश्नों का ही उत्तर देते
मेरा जीवन बीत गया!

माँगो मत, आश्वासन मुझसे
मैं तुमसे हूँ दूर नहीं,
कौन चरण है इस कविता का
रस मदिरा से चूर नहीं!

प्रेम मार्ग पर चलनेवालों के
घर हैं आबाद नहीं,
किन्तु तुम्हें पा लेनेवाले
होते हैं बरबाद नहीं!

सलीम

रात की गोद में

(१)

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक-आप—
सागर लहरों को सुला गोद, मुख चूम उमंगे रहा माप।

सब मूक नगर, पथ, गली, द्वार,
नर मूक सो रहे—पग पसार,
आँखों मे भर कर साध, पुण्य,
आँखों में भर कर अघ-जघन्य,
उर में जीवन की आशायें,
आशाओं की मृदु भाषायें,

कुछ शाप और—
अपलाप लिये,
वरदान और—
अपमान लिये,

अरमान कहीं, अवसान कहीं,
कोने में स्मृतियाँ कहीं मूक,
चञ्चल आकृतियाँ कहीं मूक,
कुत्ते भी चुप, कौए भी चुप,
तस्कर रखते पग दबा चाप—

सुनसान रात, गुप चुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(२)

मानिनी रूठी है रही जाग,
झूठे आँसू, झूठाऽनुराग,
पर उमड़ रहा अनुराग हृदय,
आँसू से करती है अभिनय,
दीपक से चितवन चक्र मिला,
प्रिय का विह्वल मन रही हिला।

बेचैन विनय,
बेचैन हृदय,
बेचैन प्रान,
बेचैन मान,

दम्पति के हैं तूफान मूक,
दम्पति के हैं अरमान मूक,

दीपक जल जल-
धोता उर-मल,

दोनों अपनापन भूल गये,
दोनों अपना मन भूल गये;
दीपक की लौ से मूक मधुर-
दोनों की धड़कन रही बोल -

मनगान रात, गुनगुन तारे, शान्त चन्द्र, नभ मूक प्राय।

(३)

दिल-जले समेटे हुए राख,
मनचले बटोरे हुए खाक,
कुछ पत्थर से दिल निर्विकार,
कुछ पानी से पिघले अपार,

केवल सपनों में प्यार मिला,
जीवन में जिनको भार मिला;

वे विरह और—
वे मिलन लिये,
वे चाह और—
वे डाह लिये,

उन्माद कहीं, अवसाद कहीं,
जीवन में जो कुछ कर न सके,
अपने घावों को भर न सके,

दिन से पाकर वे घृणा, व्यंग्य,
निशि में करते चुपचुप विलाप—

नसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(४)

शैशव की कहीं कहानी चुप,
उठती सी कहीं जवानी चुप,
थी आँखों की नादानी चुप,
अल्हड़ मस्ती का पानी चुप,

उठता उठता सा रह जाता,
चुपके चुपके सब कह जाता,

उद्गार और—
अभिसार और,
अपनी ऐंठन का—
प्यार और,

अवशेष मधुर, उठ चले सिहर,
सब अपना नव-पथ भूल गये,
आँखों में लेकर शूल नये,

ये भी करवट ले चला गये,
आँखों में सपने नये तार—

सुनसान रात, मुस्काते तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(५)

कुछ स्वामी की झिड़कन लेकर,

बेचैनी ऊबा मन लेकर,
तन भूख, भर्त्सना - धन लेकर,

जर्जर तन—मन—
जर्जर जीवन,

विगलित आहें—
छूँछी चाहें,

प्राणों में हाहाकार भरे,
आँखों का जल उपहार भरे,

सो रहे सहेजे हुए हृदय,
दुनियाँ के अपने सभी पाप—

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

(६)

कुछ सोते दुःख को लिए गाँस,
कुछ सोते कल की लिये आस,

क्या जाने कल भी जिन्हें सत्य,
लेने दे जीवन का न पथ्य ?

रे, अलग अलग—
मानव का जग,

सब चुप ही चुप—
अँधेरा घुप,

केवल मेरा कवि रहा जाग,
ले हृदय आग वाणी विहाग,

उस महा नींद का ताल प्रखर,
हर रात गूँजता रह रह कर,

पीता है निशि के गह्वर में,
जग की आँखों को नाप नाप।

सुनसान रात, गुपचुप तारे, [illegible] चन्द्र, नभ मूक था

(७)

गिरते अचूक हैं बम्ब कहीं,
नर छिन्न भिन्न अवलम्ब कहीं,

आँखों में कटती दुखद रात,
भय विगलित जीवन-पारिजात,

इस ओर मृत्यु—
उस ओर मृत्यु,

झकझोर रही—
सब ओर मृत्यु,

कुछ चौंक रहे कह वज्र गिरा,
मर रहे अँधेरे से टकरा,

निज साँस तोड़, सब आस छोड़,
नैराश्य-निशा से नाश जोड़,

सो रहे समुज्ज्वल जीवन पर,
यम-छाया का कंकाल ढाँप।

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप।

आलोक-दीप

यह नभ मेरा आलोक—दीप ,
मैं इसकी मधुर किरण चंचल ,
मैं वहन कर रहा हूँ जीवन ,
यह मद भरता जीवन पल पल ।

मैंने आँसू से किये मेघ ,
अपनी आहों से विकल रात ,
पर इसने खिल खिल बिखराया ,
रजनी की साँसों में प्रभात ।

मनमानी की सम्मुख आकर ,
वह नियति खड़ी हो दूर पार ।
इंगित में देती दीप-दान ,
इंगित से भरती अंधकार ।

धरती-कलियों के छिपी ओट ,
धूली-कुंजों में [illegible] सुगन्ध ,

कल रे कल भर कर अट्टहास,
आयेगा सजधज कर विनाश,

हँस लो रे, हँस लो सुमन, आज,
वह क्षितिज खुल रहा ले मशाल,
सागर के भीतर गगन भाल,
कुँचित कर भू के केश जाल।

संध्या की आँखों में असार,
नभ का वक्षस्थल चीर चीर।
आजानुलम्ब आँचल पसार—
मृदु, मुग्ध, गरल सी भरे पीर।

ले अमृत-सिक्त-नीहार शुभ्र,
छाती में भरकर नव दुलार,
औ' खोल गरल की प्रलय—
बीचि फैला सागर में ज्वार ज्वार।

हीरक सा शुभ्र नयनाभिराम,
आस्वादित खरतर तमोधाम,

रजनी को देना अन्धकार,
दिन को देना आलोक-दान।

कलियों को देकर सजल हास,
अलि को स्वप्नों से कर विभोर;
दिल में मीठी सी साध डाल—
हँस मसल रहा क्यों पोर पोर।

वह छोड़ रहा है देख देख,
साँसों में तेरा ही विनाश,
वह पीता जाता है पल पल,
साँसों में जीवन का विलास;

वह देख रहा है एक आँख से,
नर विनाश का पाश हार,
वह देख रहा है एक आँख से,
नर जीवन का सागर अपार;

तुमसे चाह दो प्रणय दान—
लघु प्राण, हृदय में नया प्रेम,
अपने मानव के प्रति प्रणाम
अर्पण करता युग युग क्षेम।

तुमने पाए वरदानों में—
दो प्राण—एकसे सृजन विश्व,
औ' प्राण दूसरे से पालन
है वही दया, धन, बल अहस्व।

तुमने पाए दो हाथ साथ—
है एक—पर अभय, दान दीन,
है एक भरण के लिये निखिल
पीड़ित संताड़ित को अहीन।

तुमने पाए दो पैर सबल—
यति एक, प्रगति को अपर प्रौढ़,
स्थिरता-जीवन की कला लिये—
होती जागृति की सफल दौड़।

है रहा विश्व को वह ढकेल,
पीड़ित प्राणों से खेल खेल।
नव नव विनाश का महा ग्रास,
सुख में दुख की कर रेल पेल।

आँखों में भर कर विजय वह्नि,
वह जला रहा है रोम रोम।
जग अपनी आशा की समाधि—
पर चढ़ा रहा निज प्राण होम।

मेरी गति में है नियति गुप्त—
जो खींच रही रह रह लगाम;
मैं जैसे दौड़ा ज़रा दूर;
गिर पड़ा लड़खड़ाकर अवाम;

बहका, सहमा सा भ्रमित, चकित,
औ' थका हुआ आल्हाद-हीन;
भर एक आँख में विनय अश्रु,
भर अपर आँख आशा नवीन;

मैं देख रहा हूँ बार बार
इस पार और उस पार मौन;
उमड़े मेघों की लहरों से,
अनजान बुलाता मुझे कौन।

क्या जाने कितना हर्ष लिये-
जब आ जाती है रजत रात;
तब मीठी अँगड़ाई लेकर—
करने लगती सब सृष्टि बात,

'यौवन का स्वर्ण विहान क्षणिक—
जीवन की जागृति मृत्यु ग्रास,
जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश,

तुम कहते मुझको कलाकार,
मैं कहता निजको घोर असत;

मैं पाकर भी जो रख न सका,
मैंने, कब जीवन किया महत;

मैंने देखा निज हृदय झाँक—
चेचक सा चिह्नित दग्ध, भग्न,
दागों से पुर, दर्दों से पुर,
कुछ मीठी आँखों में निमग्न।

वह मुझको पाकर भी न बना -
मेरा भटका, अटका अपन्थ।
दे गया मुझे स्मृति अवह भार,
दे गया मुझे पीड़ा अनन्त;

आँखें भी उठ उठ वहीं चलीं,
जिस ओर गया वह रसिक राज;
मैं खोज न पाया अपनापन,
मैं सब कुछ खोकर चला आज।

कैसे कह दूँ आलोक इसे -
कैसे कह दूँ मानव-विकास।
जीवन का बुझता दीप लिये खड़ा हूँ जिसमें लघु प्रकाश,

जीवन जग विस्मृति में ढलते,
आशाएँ बनतीं हैं निराश;
कलियाँ [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible];

लो सुनो, कोकिला बोल रही—
कह रही चली मैं चली हाय ;
कल का सा स्वर मुझमें न आज ,
क्या कल के स्वर का यह उपाय ?

मैं लगा भूलने ढाल ढाल—
विस्मृति में अपनापन अपंग ,
आया खुमार सब मस्त अंग ,
आया उतार बदरंग रंग ;

सपनों ने यौवन के भीतर-
झाँका, देखा, हँस रहा काल ,
सपनों ने यौवन के पद से-
चिह्नित नापी कंकाल चाल ?

वे सहम गये, मैं चौंक उठा ,
ठिठका, धीमे हो गये पैर ,
बुझ गया हृदय, ढल चला रूप ,
यह कौन आ घुसा यहाँ गैर ?

मैंने देखा फिर निकल रहा—
जीवन से मेरा समुपहास ।
जीवन का बुझता दीप लिये आया हूँ जिसमें लघु प्रकाश !

जन्म दिवस पर

आज सपने भी न अपने मैं अकेला कौन साथी—

अमृत पीने का अधर जब
चाँद से मैंने लगाए,
गरल फेनों से झुलस कर
स्वप्न मेरे लौट आए।

पुण्य-पथ मेरा न जाने,
कौन क्यों अंगार लाया,
आँसू का पीकर उजेला,
अन्धकार अपार छाया!

मैं अकेला कौन साथी, आज मेरा कौन साथी—

एक दिन यह था कि आँखों में
छिपाकर प्यार अपना,
भर दिया मेरे हृदय में
किसी ने संसार अपना;

चाँदनी थी स्वप्न प्राणों के
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—

निरंजन

पिला, शैशव को तरंगित -
कर गया बेहाल कोई ;

हँस उठे तब प्राण दो,
उच्छ्वास दो, ससार दो ही,
मधु अनन्त निशीथिनी मे,
हृदय के अभिसार दो ही,

दो दिशा की तरह अब वे
दूर आँधी के उड़ाये,
जागते हैं सहस्त्रों रवि-
शशि नयन के पथ बिछाये।

मै अकेला पन्थ साथी और तिमिर अनन्त साथी -

पहर कितने, रात कितनी,
पथ विषम कण्टक भरा है ;
प्रश्न मैं यौवन बिताया -
शेष उत्तर में - जरा है,

मौन है अज्ञात मुझसे,
ज्ञात है निर्वाण निर्बल,
गिन रहा हूँ खड़ा तट पर,
काल की लहरें समुच्छल।

युग-दीप

आज सैंतालीस वर्षों का
हुआ यह बन्द लेखा,
एक नव अज्ञात घन से
दामिनी ने झाँक देखा;

पर न मैं कुछ देख पाया
देख भी मैं किसे पाता,
क्यों न कुहरे से अनागत
झाँकता इस ओर आता?

अब अपरिचित साँस साथी, हीन-बल-विश्वास साथी—

कौन दिनकर कर सका है
अनागत का पथ प्रकाशित,
कौन शशि जो अमृत बरसा
कर रहा है धरा धवलित?

किन्तु जाने दो, मुझे होगा
तिमिर में सदा बढ़ना,
साँस दीपों से अँधेरा,
चीर अपना पथ घढ़ना,

यथामति सब ही अनेकों,
पथ जगत जीवन बनाते;

घूम जो अपने घरों के,
द्वार पर ही लौट आते;

और अपने ध्वस के
परिहार को हैं मोड़ उनके;
और अपने स्वार्थ में
सीमित निरंतर छोर उनके।

वही 'अथ' है अन्त साथी और जीवन पन्थ साथी—

आ रहा जीवन सुरा पीता
न जाने शेष कितनी!
तिक्त, कटु, मादक, अमृतमय,
गरलमय, अवशेष जितनी!

किन्तु, पतझड़ की निशा
मधुमास के दिन की कहानी,
वहन करती रही 'अथ' से
एक थाती सी 'जवानी'—

सौंपती सी देखता हूं
जरा को जो स्वय निर्बल,
एक कर स्मृति भार जिसके
अपर कर है मृत्यु सम्बल,

युग-दीप

एक नेत्र प्रदीप्त यौवन - स्मृति -
सजग पल पल नशीला ;
दूसरे में झाँकता है
चिता का उच्छ्वास नीला।

प्राण हर अब शोर साथी, अविधि विधि का जोर साथी—

आज बैठा हूँ कि लेखा
कर चलूँ पूरा पुराना ,
साँस से बुनकर बनाया
विश्व जो अपना अजाना ;

किया साहस के करों से
जगत का शृंगार मैंने ,
मिटाये पद चिह्न पिछले
बना नव संसार मैंने ,

सृजन करता रहा संख्या - हीन
जीवन में कथाएँ ,
और लिखता रहा सख्या - हीन
प्राणों की कथाएँ ,

हँस रहा हूँ आज अपनी -
सृष्टि पर रो भी रहा हूँ ,

पा रहा अनजान नित
जाना हुआ खो भी रहा हूँ ;

वृद्धि क्षय का द्वार साथी-जीत जग की हार साथी -

काल की दृढ कील पर है
घूमता भूगोल पल पल ,
क्षण, घड़ी, दिन, रात, महिने ,
वर्ष, युग, कल्पान्त चंचल ;

काल का कौतुक यही
उत्पन्न करना लील जाना ,
पुतलियों के द्वन्द्व से हँसना
कहीं जाकर समाना ;

बिलबिलाते हैं सहस्रों कीट
ज्यों पंकिल नदी में ,
हम न उनके कहीं सुनते
हर्ष शोकोच्छ्‌वास धीमे ,

ठीक ऐसे ही ससीमित हास
शोक, जरा, जवानी ,
भोग कर सोता जगत औ'
मिटाता लिख लिख कहानी ।

क्षणिक रोदन, हास साथी, अनागत की आस साथी -

किन्तु लहरों पर लिखा नित
धुल रहा इतिहास सारा,
सिवा नर के याद रखता
कौन कुहरित धुन्ध धारा।

याद भी कुछ दिवस रहती
भूल से चिपटी हुई सी,
काल के गुरु गर्भ सोती
प्रलय से लिपटी हुई सी,

जो गया है बीत वह क्या
कभी आने को गया है?
हो रहा है जो, नहीं होता
कभी वह फिर नया है!

सभी आपेक्षिक जगत का,
रुदन है औ' हास भी है,
सभी सीमित सतत पतझड़,
विनश्वर मधुमास भी है।

कुछ क्षणों का खेल साथी, कुछ क्षणों का मेल साथी—

युग-दीप

इस महा-युग के उदधि में,
लहर का अस्तित्व कितना,
क्षुद्र सैंतालीस वर्षों का
विनश्वर रूप कितना!

ग्रन्थ औ' खँडहर पुराने
सुबुक कर कहते कहानी,
किन्तु अणु में भी न होती
व्याप्त हलचल मूक वाणी;

शौक से गाता रहा मैं
ताल भी बाकी नहीं है,
खा गया है जो मुझे वह
काल भी बाकी नहीं है,

घड़ी, पल, दिन, रात, खाकर
बढा मेरा प्राण जीवन,
मुझे खाकर युग जियेगा
युगों को खाकर निधन-धन।

वही काल अकाल साथी, भूत विश्व-व्याल साथी—

कहोगे तुम फिर न क्यों मैं
मूक हो जाऊँ, न बोलूँ,

और अपने प्राण के अन्तस्तरों
को भी न खोलूँ ?

खोलने पर भी खुला है भेद
क्या जीवन मरण का,
बोलने पर भी सुना है
क्या रहस्य सृजन-गहन का ?

यथा मति में लक्ष्य, गति में
प्राप्ति की व्यापक दिशा है,
यथा दिन में सृजन, पोषण के
लिए जीवन निशा है;

इसी विधि-'मानव जगत' का
ध्येय बढ़ते चले जाना।
टूटने देना न गति को
सतत चढ़ते चले जाना।

'पूर्ण' का है 'अंश' साथी,
जन्म का है ध्वंस साथी—

आज सपने भी न अपने मैं अकेला कौन साथी-

जर्जर पत्र और वृक्ष

आज तुम भी जा रहे हो कर मुझे कगाल,
बिगड़ क्या जाता भला जो ठहरते कुछ काल'

सब गये मैंने कहा—
'जाओ समय की बात है,
अंत है हर 'आदि' का—
दिन के अनतर रात है,

एक तुम थे पीत जर्जर—
पात सूखी डाल के,
एक मै नभ तक चढा—
सदेश ले पाताल के,

अब कि जब यौवन गया,
फिर प्रणय भी क्या नाम लें;
प्यार कब तक तिमिर में—
बुझते दिलों को थाम ले।

आज स्मृति का ठॅठ मै भग्नाश हूँ कंकाल।'

—नाचता, हँसता, थिरकता
पत्र यों, कहने लगा,
वायु के संगीत में भर स्वर
कि जब बहने लगा—

'कौन सा सुख स्वर्ग था—
जो गोद में पाया नहीं,
चूमकर मुख फूल का -
आमोद भर लाया नहीं!

चाँदनी के नाच में झुक—
झूमकर गाया नहीं,
और दिन के उजाले में—
प्यार बिखराया नहीं।

सौंप दूँ मैं क्यों न निज को आज बंधु विशाल?

तुम्हारी ही गोद में—
अभिमान जीवन का मिला;
तुम्हारी ही गोद में—
मधु दान जीवन का मिला,

इस हमारी पराजय में—
चिर विजय का गान है,
सुनो, जीवन की जड़ों में—
मरण का वरदान है,

चाहता हूँ मैं चरण में
खाद होकर सो रहूँ,
तुम्हारे मधुमास में बर -
बाद होकर खो रहूँ,

बन्धु, मेरी मृत्यु से तुम हो समुन्नत भाल,
आज तुम भी जा रहे हो कर मुझे कंगाल।

विक्रम संवत्सर

वर्ष, मास, दिन, घड़ी, विपल, पल, जो साँसों के साथ चला,
दो हज़ार की ग्रंथि लगा रवि उसमें आज नया निकला।
दो हज़ार कितना-सा छोटा लघु-श्लोक का पाद नहीं।
कितने जीवन और मरण, उत्थान-पतन कुछ याद नहीं।

है अतीत का गह्वर भी तो सादि सांत पर बृहत महान।
जिसमें सोते सृष्टि, निलय, जल-प्लावन औ' भूकंप अजान।
महाकाल के बृहत-ग्रंथ में दो हज़ार का कितना मोल?
जिसमें लक्षावधि शताब्दियाँ समा गये भूगोल, खगोल?

जिसके प्रश्वासों से निर्मित होते हैं अनंत संसार,
जिसके श्वासों में हँस उठते महाप्रलय के तमो विकार,
जिसके केवल संकेतों पर नर्तित हैं अनंत ब्रह्माण्ड,
जिसके अट्टहास से हँसता नभ, पृथ्वी का यह उद्भाण्ड,

है मनुष्य भी महाकाल का एक ज्वलंत पिण्ड साकार,
है मनुष्य भी महा-प्रकृति का मधु-नवनीत भाव उद्गार।
वही प्रकृति की सार्थकता है चरम परम-विज्ञान विकास,
भाव-अभाव, दुःख-सुख, जीवन-मरण, कला-साहित्य विकास?

इसके लिए विनिर्मित पृथ्वी, भूधर, सर, सागर, सब लोक।
इसके लिए विनिर्मित ऋतु,गति,रवि-शशिका उज्ज्वल आलोक !

× × ×

तुम मानव की एक किरण ले आये किन्तु अतीत हुए।
स्मृतियाँ शेष रहीं कृतियों की तुम युग-श्वास पुनीत हुए।
हे संवत्सर, महाकाल में काल तुम्हारा चिह्न हुआ।
निकला सूर्य अशेषच्छवि ले दिवस-मान सा छिन्न हुआ !

उषा उदय के संग संग ही भू को स्वर्ग बना डाला।
किंतु बन गया स्वय सभी वह अमा-निशा की कटु-हाला !
जो उत्थान बना वह बरबस, पतन बना, खग्रास बना।
जो जीवन बन आया भूपर वही हमारा ह्रास बना !

दीर्घ विजय बन गई पराजय ह्रास मृत्यु-उल्लास हुआ।
जिस प्रकाश ने तम को खाया वह प्रकाश का त्रास हुआ ?
आनेवाले चले गये सब स्मृतियाँ आज विशेष रहीं।
फूल फूल पर आभा आई आई किन्तु न शेष रही !

तुमने बौद्ध-विभव को देखा नया ज्ञान, ससार नया।
प्राणदान में जीवन देखा जीवन में व्यापार नया।
सत्य, अहिंसा के बल पर युग नया और विश्वास नया।
वह भी रहा, न रह ही पाया कोई भी उल्लास नया।

नाटककार विश्व के, कवि-गुरु कालिदास तुमने देखे।
बाण, अमर, भवभूति, हर्ष औ' दण्डि, माघ तुमने देखे।
मम्मट, लल्लट, रुद्रट, पण्डित विष्णुगुप्त जयदेव अनेक।
तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी, हरिश्चन्द्र कोविद सविवेक।

तुमने देखा जिसको चढते, उसको भी गिरते देखा।
उठते प्रलय मेघ को देखा; बूँद बूँद झिरते देखा?
हूणों, तातारों, मुगलों के टिड्डी-दल आते देखे।
शैशव में ही यौवन जिनके खिलते, मुरझाते देखे!

तुम वैभव के काल व्याल की केंचुल हुए, अतीत हुए।
तुमने देखा हर्ष बदलकर, दुःख-स्मृति के गीत हुए।
जग को दलने वाले यौवन पद दलितों की धूलि हुए।
हँसने वाले फूल काल के शूल बबूल समूल हुए।

सौन्दर्य से मुखरित वे स्मय, वे यौवन के गान नये;
जिनसे गर्वित थे बसंत के स्वर्ग भरे सामान नये।
वे पृथ्वी के गहन गर्भ में काल वृद्ध के केश हुए;
एक बिन्दु से कालोदधि में लीन हुए, निःशेष हुए।

नव नव शासन, नव विधान से नई शान से राज उठे।
कुछ उठते उठते जा सोये कुछ ले टूटे साज उठे।
वह भी देखा, यह भी देखो मानव का व्यापार नया।
हँस हँस विष पीने वालो का चाव नया, शृंगार नया।

युग-दीप

रण उन्मादी इन राष्ट्रों को 'गांधी' भी समझा न सके,
जो इस युग के 'बुद्ध' कहाते वे रण आग बुझा न सके।
सभी विश्व में धू धू करके महानाश है जाग उठा,
सभी दिशाएँ आग उगलती जीवन रो रो भाग उठा।

और तुम्हारा यह भारत भी, दीन, दरिद्र, गुलाम बना,
किंकर्तव्य विमूढ, दलित, अविवेकी, अज्ञ, अनाम बना।
ऐक्य आज तो स्वप्न हो गया स्वप्न हुआ जीवन अपना,
जो आया वह भाग्य बन गया भाग्य बना मरना, तपना।

दो हज़ार की ग्रंथि तुम्हारी गरल-ग्रंथि सी फूट रही,
जिससे भूख महामारी की चिनगारी सी छूट रही।
विक्रम की पीयूष लता के पुष्प ! न हालाहल उगलो,
और न मानव के विवेक को महानाश मुख से निगलो।

बदलो मरण महाजीवन में जीवन को जाग्रत कर दो !
मानव को मानव बनने का, 'हे सवत्सर', नव वर दो।
आगे की सदियों में कोई विषम वाद-सवाद न हो,
मानव की दाढों में मानव, रुधिर बिन्दु का स्वाद न हो।

जीवन में विवेक हो, सुख हो, परहित का प्रतिवाद न हो।
साम्यवाद हो, विश्व-बन्धुता, हर्षोत्कर्ष, विषाद न हो।

कविता-क्रम

पृष्ठ

अंधकार, अंधकार, अंधकार चीर चल। .. . १

धीरे धीरे युग-दीप चाला। २

पल पल करके युग बीत गया। ३

अंधकार अनंत सिर धर जल रहा दीपक अकेला। . .. ४

दीप कहता अँधेरे से पाप का अधिवास तू।.. .. ... ५

मैं जीवन से भय खाता हूँ। ६

सतत अपेक्षा लिये जगत में जीवन आता है। ७

बीत गया फिर शेष रहा क्या? ८

बीत गया फिर शेष रहा क्या? ९

रो रही है बादलों से झाँक किसकी आग? १०

मानव तुमसे हार गया मैं! ११

मैं कब हारा, मैं कब हारा! १२

तू हारा मैं जीत गया!! १३

स्वर्ग भी मैं ही नरक भी मैं। १४

मैं रहा देखता मूक खड़ा, कुछ स्वर बिखरे बन गान गये? ... १५

यह क्या कैसा मैंने पाया! १६

मैं अकेला और चारों ओर सूनापन? १७

विजयिनि, यह वरदान तुम्हारा आज मुझे अभिशाप बना क्यों? . १९

आज इस गुरुहार में जाने अमृत भी क्षार क्यों? २१

हास भीने स्मृति सलज दृग प्राण में पुलकन सँजोये। ... २२
पहले ही आँसू क्या कम थे ये आग पिये आये बादल ! २३
आज नई आई होली है। २६
आज विवशतायें प्राणों की एक नया तूफान लिये हैं। २७
क्यों आज छलकता जीवन मधु इन खाली टूटे प्यालों में ! .. ३०
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ! ३२
बिटिया, दुख का अन्त हो गया। ३३
स्वप्न की परियाँ उतरतीं आती बूँदों पर। ३४

सात कविताएँ

प्राण बन्धन ३५
रात की गोद में ३८
आलोक-दीप ४५
तृण भार ४८
जन्म दिवस पर ५३
जर्जर वृक्ष और पत्ता ६२
विक्रम सवत्सर... ... . ६४